कुन्दकुन्दशतक पद्यानुवाद

(हरिगीत)

सुर–असुर–इन्द्र–नरेन्द्र–वंदित कर्ममल निर्मलकरन।
वृषतीर्थ के करतार श्री वर्द्धमान जिन शत–शत नमन।।१।।
अरहंत सिद्धाचार्य पाठक साधु हैं परमेष्ठि पण।
सब आतमा की अवस्थाएँ आतमा ही है शरण।।२।।
सम्यक् सुदर्शन ज्ञान तप समभाव सम्यक् आचरण।
सब आतमा की अवस्थाएँ आतमा ही है शरण।।३।।
निर्ग्रन्थ है नीराग है नि:शल्य है निर्दोष है।
निर्मान–मद यह आतमा निष्काम है निष्क्रोध है।।४।।
निर्दण्ड है निर्द्वन्द्व है यह निरालम्बी आतमा।
निर्देह है निर्मूढ है निर्भयी निर्मम आतमा।।५।।
मैं एक दर्शन–ज्ञानमय नित शुद्ध हूँ रूपी नहीं।
ये अन्य सब परद्रव्य किंचित् मात्र भी मेरे नहीं।।६।।
चैतन्य गुणमय आतमा अव्यक्त अरस अरूप है।
जानो अलिंगग्रहण इसे यह अनिर्दिष्ट अशब्द है।।७।।
जिस भाँति प्रज्ञाछैनी से पर से विभक्त किया इसे।
उस भाँति प्रज्ञाछैनी से ही अरे ग्रहण करो इसे।।८।।
जो जानता मैं शुद्ध हूँ वह शुद्धता को प्राप्त हो।
जो जानता अविशुद्ध वह अविशुद्धता को प्राप्त हो।।९।।
यह आत्म ज्ञानप्रमाण है अर ज्ञान ज्ञेयप्रमाण है।
हैं ज्ञेय लोकालोक इस विधि सर्वगत यह ज्ञान है।।१०।।
चारित्र दर्शन ज्ञान को सब साधुजन सेवें सदा।
ये तीन ही हैं आतमा बस कहे निश्चयनय सदा।।११।।

'यह नृपति है' ह्न यह जानकर अर्थार्थिजन श्रद्धा करें।
अनुचरण उसका ही करें अति प्रीति से सेवा करें।।१२।।
यदि मोक्ष की है कामना तो जीवनृप को जानिये।
अति प्रीति से अनुचरण करिये प्रीति से पहिचानिये।।१३।।
जो भव्यजन संसार–सागर पार होना चाहते।
वे कर्मईंधन–दहन निज शुद्धात्मा को ध्यावते।।१४।।
मोक्षपथ में थाप निज को चेतकर निज ध्यान धर।
निज में ही नित्य विहार कर परद्रव्य में न विहार कर।।१५।।
जीवादि का श्रद्धान सम्यक् ज्ञान सम्यग्ज्ञान है।
रागादि का परिहार चारित–यही मुक्तिमार्ग है।।१६।।
तत्त्वरुचि सम्यक्त्व है तत्ग्रहण सम्यग्ज्ञान है।
जिनदेव ने ऐसा कहा परिहार ही चारित्र है।।१७।।
जानना ही ज्ञान है अरु देखना दर्शन कहा।
पुण्य–पाप का परिहार चारित्र यही जिनवर ने कहा।।१८।।
दर्शन रहित यदि वेष हो चारित्र विरहित ज्ञान हो।
संयम रहित तप निरर्थक आकाश–कुसुम समान हो।।१९।।
दर्शन सहित हो वेश चारित्र शुद्ध सम्यग्ज्ञान हो।
संयम सहित तप अल्प भी हो तदपि सुफल महान हो।।२०।।
परमार्थ से हो दूर पर तप करें व्रत धारण करें।
सब बालतप है बालव्रत वृषभादि सब जिनवर कहें।।२१।।
व्रत नियम सब धारण करें तप शील भी पालन करें।
पर दूर हों परमार्थ से ना मुक्ति की प्राप्ती करें।।२२।।
जो शक्य हो वह करें और अशक्य की श्रद्धा करें।
श्रद्धान ही सम्यक्त्व है इस भाँति सब जिनवर कहें।।२३।।
जीवादि का श्रद्धान ही व्यवहार से सम्यक्त्व है।
पर नियतनय से आत्म का श्रद्धान ही सम्यक्त्व है।।२४।।

नियम से निज द्रव्य में रत श्रमण सम्यकवंत है।
सम्यक्त्व-परिणत श्रमण ही क्षय करें करमानन्त हैं ।।२५।।
मुक्ती गये या जायेंगे माहात्म्य है सम्यक्त्व का।
यह जान लो हे भव्यजन! इससे अधिक अब कहें क्या ।।२६।।
वे धन्य हैं सुकृतार्थ हैं वे शूर नर पण्डित वही।
दु:स्वप्न में सम्यक्त्व को जिनने मलीन किया नहीं ।।२७।।
चिदचिदास्रव पाप-पुण्य शिव बंध संवर निर्जरा।
तत्त्वार्थ ये भूतार्थ से जाने हुए सम्यक्त्व हैं।।२८।।
शुद्धनय भूतार्थ है अभूतार्थ है व्यवहारनय।
भूतार्थ की ही शरण गह यह आतमा सम्यक् लहे ।।२९।।
अनार्य भाषा के बिना समझा सके न अनार्य को।
बस त्योंहि समझा सके ना व्यवहार बिन परमार्थ को ।।३०।।
देह-चेतन एक हैं ह्न यह वचन है व्यवहार का।
ये एक हो सकते नहीं ह्न यह कथन है परमार्थ का ।।३१।।
दृग ज्ञान चारित जीव के हैं ह्न यह कहा व्यवहार से।
ना ज्ञान दर्शन चरण ज्ञायक शुद्ध हैं परमार्थ से ।।३२।।
जो सो रहा व्यवहार में वह जागता निज कार्य में।
जो जागता व्यवहार में वह सो रहा निज कार्य में ।।३३।।
इस ही तरह परमार्थ से कर नास्ति इस व्यवहार की।
निश्चयनयाश्रित श्रमणजन प्राप्ति करें निर्वाण की ।।३४।।
सद्धर्म का है मूल दर्शन जिनवरेन्द्रों ने कहा।
हे कानवालो सुनो! दर्शन-हीन वंदन योग्य ना ।।३५।।
जो ज्ञान-दर्शन-भ्रष्ट हैं चारित्र से भी भ्रष्ट हैं।
वे भ्रष्ट करते अन्य को वे भ्रष्ट से भी भ्रष्ट हैं।।३६।।
दृग-भ्रष्ट हैं वे भ्रष्ट हैं उनको कभी निर्वाण ना।
हों सिद्ध चारित्र-भ्रष्ट पर दृग-भ्रष्ट को निर्वाण ना ।।३७।।

जो लाज गौरव और भयवश पूजते दृग-भ्रष्ट को।
की पाप की अनुमोदना ना बोधि उनको प्राप्त हो ।।३८।।
चाहैं नमन दृगवंत से पर स्वयं दर्शनहीन हों।
है बोधिदुर्लभ उन्हें भी वे भी वचन-पग हीन हों ।।३९।।
यद्यपि करें वे उग्र तप शत-सहस-कोटि वर्ष तक।
पर रतनत्रय पावें नहीं सम्यक्त्व-विरहित साधु सब ।।४०।।
जिसतरह द्रुम परिवार की वृद्धि न हो जड़ के बिना।
बस उसतरह ना मुक्ति हो जिनमार्ग में दर्शन बिना ।।४१।।
असंयमी न वन्द्य है दृगहीन वस्त्रविहीन भी।
दोनों ही एक समान हैं दोनों ही संयत हैं नहीं ।।४२।।
ना वंदना हो देह की कुल की नहीं ना जाति की।
कोई करे क्यों वंदना गुणहीन श्रावक-साधु की ।।४३।।
मैं कर्म हूँ नोकर्म हूँ या हैं हमारे ये सभी।
यह मान्यता जबतक रहे अज्ञानी हैं तबतक सभी ।।४४।।
करम के परिणाम को नोकरम के परिणाम को।
जो ना करे बस मात्र जाने प्राप्त हो सद्ज्ञान को ।।४५।।
मैं मारता हूँ अन्य को या मुझे मारें अन्यजन।
यह मान्यता अज्ञान है जिनवर कहें हे भव्यजन!।।४६।।
निज आयुक्षय से मरण हो यह बात जिनवर ने कही।
तुम मार कैसे सकोगे जब आयु हर सकते नहीं? ।।४७।।
निज आयुक्षय से मरण हो यह बात जिनवर ने कही।
वे मरण कैसे करें तब जब आयु हर सकते नहीं ? ।।४८।।
मैं हूँ बचाता अन्य को मुझको बचावे अन्यजन।
यह मान्यता अज्ञान है जिनवर कहें हे भव्यजन ।।४९।।
सब आयु से जीवित रहें ह्न यह बात जिनवर ने कही।
जीवित रखोगे किस तरह जब आयु दे सकते नहीं ।।५०।।

सब आयु से जीवित रहें ह्न यह बात जिनवर ने कही।
कैसे बचावें वे तुझे जब आयु दे सकते नहीं? ।।५१।।
मैं सुखी करता दु:खी करता हूँ जगत में अन्य को।
यह मान्यता अज्ञान है क्यों ज्ञानियों को मान्य हो? ।।५२।।
मारो न मारो जीव को हो बन्ध अध्यवसान से।
यह बंध का संक्षेप है तुम जान लो परमार्थ से।।५३।।
प्राणी मरें या ना मरें हिंसा अयत्नाचार से।
तब बंध होता है नहीं जब रहें यत्नाचार से।।५४।।
उत्पाद-व्यय-ध्रुवयुक्त सत् सत् द्रव्य का लक्षण कहा।
पर्याय-गुणमय द्रव्य है ह्न यह वचन जिनवर ने कहा।।५५।।
पर्याय बिन ना द्रव्य हो ना द्रव्य बिन पर्याय ही।
दोनों अनन्य रहे सदा ह्न यह बात श्रमणों ने कही।।५६।।
द्रव्य बिन गुण हों नहीं गुण बिना द्रव्य नहीं बने।
गुण द्रव्य अव्यतिरिक्त हैं ह्न यह कहा जिनवर देव ने।।५७।।
उत्पाद हो न अभाव का ना नाश हो सद्भाव में।
उत्पाद-व्यय करते रहें सब द्रव्य गुण-पर्याय में।।५८।।
असद्भूत हों सद्भूत हों सब द्रव्य की पर्याय सब।
सद्ज्ञान में वर्तमानवत् ही हैं सदा वर्तमान सब।।५९।।
पर्याय जो अनुत्पन्न हैं या नष्ट जो हो गई हैं।
असद्भावी वे सभी पर्याय ज्ञानप्रत्यक्ष हैं।।६०।।
पर्याय जो अनुत्पन्न हैं या हो गई हैं नष्ट जो।
फिर ज्ञान की क्या दिव्यता यदि ज्ञात होवें नहीं वो ? ।।६१।।
अरहंत-भासित ग्रथित-गणधर सूत्र से ही श्रमणजन।
परमार्थ का साधन करें अध्ययन करो हे भव्यजन!।।६२।।
डोरा सहित सुइ नहीं खोती गिरे चाहे वन-भवन।
संसार-सागर पार हों जिनसूत्र के ज्ञायक श्रमण।।६३।।

तत्त्वार्थ को जो जानते प्रत्यक्ष या जिनशास्त्र से।
दृगमोह क्षय हो इसलिए स्वाध्याय करना चाहिए।।६४।।
जिन-आगमों से सिद्ध हों सब अर्थ गुण-पर्यय सहित।
जिन-आगमों से ही श्रमणजन जानकर साधें स्वहित।।६५।।
स्वाध्याय से जो जानकर निज अर्थ में एकाग्र हैं।
भूतार्थ से वे ही श्रमण स्वाध्याय ही बस श्रेष्ठ है।।।६६।।
जो श्रमण आगमहीन हैं वे स्व-पर को नहिं जानते।
वे कर्मक्षय कैसे करें जो स्व-पर को नहिं जानते।।६७।।
व्रत सहित पूजा आदि सब जिनधर्म में सत्कर्म हैं।
दृगमोह-क्षोभ विहीन निज परिणाम आतमधर्म हैं।।६८।।
चारित्र ही बस धर्म है वह धर्म समताभाव है।
दृगमोह-क्षोभ विहीन निज परिणाम समताभाव है।।६९।।
प्राप्त करते मोक्षसुख शुद्धोपयोगी आतमा।
पर प्राप्त करते स्वर्गसुख हि शुभोपयोगी आतमा।।७०।।
शुद्धोपयोगी श्रमण हैं शुभोपयोगी भी श्रमण।
शुद्धोपयोगी निरास्रव हैं आस्रवी हैं शेष सब।।७१।।
कांच-कंचन बन्धु-अरि सुख-दु:ख प्रशंसा-निन्द में।
शुद्धोपयोगी श्रमण का समभाव जीवन-मरण में।।७२।।
भावलिंगी सुखी होते द्रव्यलिंगी दु:ख लहें।
गुण-दोष को पहिचान कर सब भाव से मुनि पद गहें।।७३।।
मिथ्यात्व का परित्याग कर हो नग्न पहले भाव से।
आज्ञा यही जिनदेव की फिर नग्न होवे द्रव्य से।।७४।।
जिनभावना से रहित मुनि भव में भ्रमें चिरकाल तक।
हों नगन पर हों बोधि-विरहित दु:ख लहें चिरकाल तक।।७५।।
वस्त्रादि सब परित्याग कोड़ाकोड़ि वर्षों तप करें।
पर भाव बिन ना सिद्धि हो सत्यार्थ यह जिनवर कहें।।७६।।

नारकी तिर्यंच आदिक देह से सब नग्न हैं।
सच्चे श्रमण तो हैं वही जो भाव से भी नग्न हैं।।७७।।
जन्मते शिशुवत् अकिंचन नहीं तिल-तुष हाथ में।
किंचित् परिग्रह साथ हो तो श्रमण जाँय निगोद में।।७८।।
जो आर्त होते जोड़ते रखते रखाते यत्न से।
वे पाप मोहितमती हैं वे श्रमण नहिं तिर्यंच हैं।।७९।।
राग करते नारियों से दूसरों को दोष दें।
सद्ज्ञान-दर्शन रहित हैं वे श्रमण नहिं तिर्यंच हैं।।८०।।
श्रावकों में शिष्यगण में नेह रखते श्रमण जो।
हीन विनयाचार से वे श्रमण नहिं तिर्यंच हैं।।८१।।
पार्श्वस्थ से भी हीन जो विश्वस्त महिला वर्ग में।
रत ज्ञान-दर्शन-चरण दें वे नहीं पथ अपवर्ग में।।८२।।
धर्म से हो लिंग केवल लिंग से न धर्म हो।
समभाव को पहिचानिये द्रव्यलिंग से क्या कार्य हो।।८३।।
विरक्त शिवरमणी वरें अनुरक्त बाँधें कर्म को।
जिनदेव का उपदेश यह मत कर्म में अनुरक्त हो।।८४।।
परमार्थ से हैं बाह्य वे जो मोक्षमग नहीं जानते।
अज्ञान से भवगमन-कारण पुण्य को हैं चाहते।।८५।।
सुशील है शुभकर्म और अशुभ करम कुशील है।
संसार के हैं हेतु वे कैसे कहें कि सुशील हैं?।।८६।।
ज्यों लोह बेड़ी बाँधती त्यों स्वर्ण की भी बाँधती।
इस भाँति ही शुभ-अशुभ दोनों कर्म बेड़ी बाँधती।।८७।।
दु:शील के संसर्ग से स्वाधीनता का नाश हो।
दु:शील से संसर्ग एवं राग को तुम मत करो।।८८।।
पुण्य-पाप में अन्तर नहीं है ह्न जो न मानें बात ये।
संसार-सागर में भ्रमें मद-मोह से आच्छन्न वे।।८९।।

इन्द्रियसुख सुख नहीं दुख है विषम बाधा सहित है।
है बंध का कारण दुखद परतंत्र है विच्छिन्न है।।९०।।
शुभ-अशुभ रचना वचन वा रागादिभाव निवारिके।
जो करें आतम ध्यान नर उनके नियम से नियम है।।९१।।
सद्ज्ञान-दर्शन-चरित ही है 'नियम' जानो नियम से।
विपरीत का परिहार होता 'सार' इस शुभ वचन से।।९२।।
जैनशासन में कहा है मार्ग एवं मार्गफल।
है मार्ग मोक्ष-उपाय एवं मोक्ष ही है मार्गफल।।९३।।
हैं जीव नाना कर्म नाना लब्धि नानाविध कही।
अतएव वर्जित वाद है निज-पर समय के साथ भी।।९४।।
ज्यों निधी पाकर निज वतन में गुप्त रह जन भोगते।
त्यों ज्ञानिजन भी ज्ञाननिधि परसंग तज के भोगते।।९५।।
यदि कोई ईर्ष्याभाव से निन्दा करे जिनमार्ग की।
छोड़ो न भक्ती वचन सुन इस वीतरागी मार्ग की।।९६।।
जो थाप निज को मुक्तिपथ भक्ती निवृत्ती की करें।
वे जीव निज असहाय गुण सम्पन्न आतम को वरें।।९७।।
मुक्तिगत नरश्रेष्ठ की भक्ति करें गुणभेद से।
वह परमभक्ति कही है जिनसूत्र में व्यवहार से।।९८।।
द्रव्य गुण पर्याय से जो जानते अरहंत को।
वे जानते निज आतमा दृगमोह उनका नाश हो।।९९।।
सर्व ही अरहंत ने विधि नष्ट कीने जिस विधी।
सबको बताई वही विधि हो नमन उनको सब विधी।।१००।।
है ज्ञान दर्शन शुद्धता निज शुद्धता श्रामण्य है।
हो शुद्ध को निर्वाण शत-शत बार उनको नमन है।।१०१।।

ह्न•ह्न